चेन्नई (भारत)
जुलाई २६, २००१

सन्देश संख्या ३७

क्रिया की परावस्था

क्रिया (बिना श्रेय लिये या महत्वपूर्ण होने का ढिंढोरा पीटे कार्य करना, साथ रखना किन्तु स्वामित्व का अहंकार न होना, नेतृत्व तो करना किन्तु प्रभुत्व स्थापित न करना, खण्ड चैतन्य के हस्तक्षेप से मुक्त समझदारी) ही प्रमुख सद्‌गुण है। जब सद्‌गुण लुप्त हो जाता है तब नैतिकता प्रकट होती है। इस प्रकार समाज द्वारा मन एवम् अहंकार के संग्रहणशील व संचयी मूल्यों के माध्यम से ढोंग एवं दिखावेपन को प्रोत्साहित करने की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। ऐसी नैतिकता एवं पाखण्ड का परित्याग करें। यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए 'अवश्य करने योग्य' है। यदि कोई एक या दो झूठ बोले तो समाज उसे झूठा कहेगा। किन्तु यदि वह सदा झूठ बोलने की आदत डाल ले तो समाज उसे आदरणीय पदों पर बैठाकर महिमामण्डित करेगा। जब उससे किसी विशेष परिस्थिति या धोखे में किसी की हत्या हो जाती है तो उसे हत्यारा मानकर फाँसी पर चढ़ा दिया जाता है परन्तु जब वही पूरे होशो हवास में लाखों निर्दोष लोगों की निर्मम हत्या करने के लिए परमाणु बम गिराता है तब वह एक नायक के रूप में सम्मानित किया जाता है। छोटी चोरी करने वाले को चोर कहा जाता है किन्तु जो दिन–रात बड़े पैमाने पर लूट मचा रहे हैं उन्हें सफल व्यवसायी कहा जाता है। यह मन द्वारा संपोषित सामाजिक नैतिकता है।

लाभ छोड़ें। इच्छा कम करें। स्वार्थलोलुपता त्यागें। डाकू तथा चोर स्वतः नष्ट हो जायेंगे।

उपयोगिता रिक्तता में है और लाभ वस्तु–मूल्य में।

एक पात्र जिस वस्तु से बना है उसके कारण वह लाभदायक है किन्तु उपयोगी तभी हो सकता है जबकि वह खाली हो। जैसे–सोने का भरा पात्र पत्थर के खाली पात्र की तुलना में अधिक मूल्यवान (लाभकारी) होते हुए भी भरा होने के कारण उपयोगी नहीं है।

रिक्तता (शून्यता) की चिरंतन प्रज्ञा के साथ रहें।

मन को खाली करें और शरीर रक्षा के लिए पेट भरें।

महत्वाकांक्षा को कमजोर करें, शरीर की हडियों को मजबूत करें।

चित्तवृत्ति की चकाचौंध को मन्द करें।

देहमुक्त निर्मन पूर्ण चैतन्य को उपलब्ध हों। चित्तवृत्ति अपने अवचेतन एवम् अचेतन तत्व के साथ विखण्डित चैतन्य है जबकि प्रज्ञा (पुरूष) अखण्ड एवं शुद्ध चैतन्य है।

प्रज्ञा ऊर्जायुक्त (प्रकृति) है – मातृ अर्थात् धरित्री भाव से युक्त। माँ कभी असफल नहीं होने देती है। सपाट भूमि कभी गिरती नहीं। चित्तवृत्ति विखण्डन (मन) और इसके आत्मसंरक्षी–यंत्ररचना की निर्मम प्रक्रिया है।

क्रिया और की दौड़ नहीं है। यह बहते हुए जल की भाँति जीवन जीना है न कि मानसिक अवधारणाओं को प्रतिपादित करना। क्रिया कोई कपोल कल्पना नहीं, अतः कोई संघर्ष भी नहीं। क्रिया कोई विश्वास पद्धति भी नहीं, अतः कोई दोषारोपण भी नहीं। क्रिया का अर्थ संपदा एवं प्रभुत्व नहीं और इसलिए कोई आपदा–विपदा नहीं। क्रिया का अभिप्राय विशेष मान नहीं अतः कोई मानहानि भी नहीं।

आप (विदेह प्रज्ञा ऊर्जा) का न कोई जन्म है, न कोई मरण। तुच्छ और निर्मम चित्तवृत्ति शरीर के साथ उत्पन्न होता है और शरीर के साथ ही समाप्त हो जाता है। आप देह नहीं हैं, आप मन और इसकी शरारत भी नहीं हैं। सम्पूर्ण उधारी ज्ञान का परित्याग कर अपने समस्त दुःखों का अन्त करें।

अधिक संचय कर उलझन में न फँसें।

थोड़ा रखें और अधिक लाभ उठायें।

अपने को मिटाकर नवीनता प्राप्त करें।

शून्य हेाकर पूर्ण बनें।

समर्पण के साथ सरल बनें।

विनम्र होकर विजयी बनें।

बिना प्रदर्शन के प्रदीप्त होवें।

सफाई न देकर अपनी अलग पहचान बनायें।

आत्मश्लाघा से बचें और सम्मान प्राप्त करें।

डींगें न हाँककर पतन से बचें।

वाद–विवाद से बचें।

यही है क्रिया की परावस्था।

ॐ परावस्था ॐ